पूर्ण न्यायपीठ

माननीय मुख्य न्यायाधीश आर.एस. नरूला और माननीय न्यायाधीश एम.आर. शर्मा और माननीय न्यायाधीश राजेंद्र नाथ मित्तल

हरि कृष्ण आदि - याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ आदि - उत्तरदाता

1972 की सिविल रिट संख्या 608
30 मई 1974

भूमि अधिग्रहण अधिनियम (1894 का 1) - धारा 23 और 34 - स्थावर सम्पत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम, 1952 (1952 का XXX) - धारा 8, दिए गए प्रतिकर पर 15 प्रतिशत की छूट और 6 प्रतिशत ब्याज से इनकार- अनुच्छेद 14 भारतीय संविधान का उल्लंघन हुआ हैं या नहीं - ब्याज अधिनियम (1839 का XXXII)-धारा 1-अधिग्रहीत भूमि के लिए प्रतिकर की राशि सुनिश्चित की गई-भूस्वामी-क्या उस पर ब्याज का हकदार है।

अभिनिर्धारित, कि स्थावर सम्पत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम, 1952 की धारा 7(3) के प्रावधानों के परिणामस्वरूप और धारा 7(1) के तहत केवल ऐसी संपत्ति का अधिग्रहण किया जा सकता है, जिसकी मांग सरकार द्वारा पहले ही की जा चुकी है। इस अधिनियम में यह सुझाव देने के लिए कुछ भी नहीं है कि जिस संपत्ति की मांग की गई है, उसे भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत अधिग्रहित नहीं किया जा सकता है। इसलिए, स्थावर सम्पत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम, 1952 की धारा 7(1) का सहारा लेकर इस अधिनियम के तहत एक भूस्वामी की अधिग्रहीत भूमि और ठीक उसी प्रकार स्थित किसी अन्य भूस्वामी की भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत अधिग्रहीत भूमि का अधिग्रहण

करने की जिम्मेदारी सरकार के मनमाने और अनिर्देशित विवेक पर छोड़ देता है। स्थावर सम्पत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम, 1952 के तहत अधिग्रहण, अधिग्रहीत भूमि के भूस्वामी के लिए प्रतिकूल है क्योंकि इस अधिनियम के तहत अधिग्रहण के मामले में भूस्वामी को प्रतिकर की राशि पर भुगतान और ब्याज के भुगतान के अपने वैधानिक अधिकार से वंचित हो जाता है और इन दोनों अधिकारों का वह हकदार है जब उसकी भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत अर्जित की जाती है। इस प्रकार अधिग्रहण अधिनियम की धारा 8(3)(ए) सरकार को अधिग्रहीत भूमि के समान स्थिति वाले भूस्वामी को प्रतिकर के भुगतान के मामले में भेदभाव करने में सक्षम बनाती है। इसके अलावा, एक को कम और दूसरे को अधिक भुगतान करने के प्रयोजनों के लिए मांगी गई और गैर-मांगी गई भूमि के बीच वर्गीकरण किसी भी बोधगम्य अंतर पर आधारित नहीं है। न ही मालिकों के दो वर्गों में अंतर का कोई तर्कसंगत संबंध है इस सार्वजनिक प्रयोजन के लिए संपत्ति के अधिग्रहण के उद्देश्य से। दोनों अधिनियमों के तुलनात्मक प्रावधान राज्य को कानूनों की समान सुरक्षा की गारंटी के विरुद्ध एक भूस्वामी को दूसरे समान स्थिति वाले भूस्वामी से अलग व्यवहार देने में सक्षम बनाते हैं। इसलिए स्थावर सम्पत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम, 1952 की धारा 8(3)(ए) के प्रावधान, जहां तक वे दिए गए प्रतिकर पर सोलटियम के रूप में 15 प्रतिशत देने से इनकार करते हैं और 6 प्रतिशत की दर से ब्याज देने से भी इनकार करते हैं, संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रावधानों का उल्लंघन हैं।

अभिनिर्धारित, कि ब्याज अधिनियम, 1939 की धारा 1 के प्रावधान निहित हैं प्रत्येक न्यायालय को सभी निश्चित राशियों पर ब्याज की अनुमति देने का विवेकाधिकार है जो कि एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को देय हैं। स्थावर सम्पत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम के तहत सरकार द्वारा भूमि मालिक को देय प्रतिकर की राशि भूमि अधिग्रहण कलेक्टर के फैसले से सुनिश्चित होते ही निश्चित हो जाती है। इसलिए, उस न्यायालय के पास अधिग्रहण अधिनियम में किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में भी ब्याज अधिनियम की धारा 1 के तहत ब्याज देने का अधिकार क्षेत्र है। ब्याज अधिनियम की धारा 1 के परंतुक से पता चलता है कि उस धारा के दायरे से उत्पन्न ब्याज का भुगतान करने का दायित्व उस संबंध में एक अंतर को भरने के लिए है जो अधिनियम की धारा 8 में छोड़ दिया गया है जो कि दायित्व बनाता है, राज्य मालिक को प्रतिकर की राशि का भुगतान करने का।

इसलिए इस तथ्य के बावजूद कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 34 के प्रावधानों को अधिग्रहण अधिनियम के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं किया गया है, भूमि मालिक इस अधिनियम के तहत अर्जित अपनी भूमि के लिए निर्धारित प्रतिकर की राशि पर ब्याज का दावा करने का हकदार है।

इस मामले में शामिल कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न का निर्णय करने के लिए माननीय श्री न्यायमूर्ति प्रेम चंद जैन द्वारा 28 अगस्त, 1972 के आदेश के तहत मामले को डिवीजन बेंच में दोबारा भेज दिया गया। माननीय श्री न्यायमूर्ति एस.एस. संधावालिया और माननीय श्री न्यायमूर्ति पी.सी. जैन की खंडपीठ ने अपने आदेश दिनांक 16 अगस्त, 1973 द्वारा मामले को पूर्ण पीठ को भेज दिया। माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री आर.एस. नरूला, माननीय श्री न्यायमूर्ति एम.आर. शर्मा और माननीय श्री न्यायमूर्ति राजेंद्र नाथ मित्तल की पूर्ण पीठ ने अंततः 30 मई, 1974 को मामले का फैसला किया।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका में प्रार्थना की गई है कि मैंडेमस या किसी अन्य उचित रिट, आदेश या निर्देश की प्रकृति में एक रिट जारी की जाए, जिसमें उत्तरदाताओं को पहले से निर्धारित और प्रावधानों के अनुसार याचिकाकर्ता को प्रतिकर का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए। अधिनियम की धारा 8 को अवैध और निरर्थक घोषित किया जाए और प्रतिवादियों को प्रतिकर की राशि का 15 प्रतिशत की दर से याचिकाकर्ता को भुगतान करने का निर्देश दिया जाए और वास्तविक भुगतान की तारीख तक 6 प्रतिशत की दर से ब्याज भी दिया जाए।

याचिकाकर्ताओं की ओर से अधिवक्ता के.पी.भंडारी और आई.बी.भंडारी।
प्रतिवादियों की ओर से अधिवक्ता कुलदीप सिंह बार-एट-लॉ और आर.एस. मोंगिया।

<u>निर्णय</u>

<u>माननीय मुख्य न्यायाधीश आर.एस. नरूला :</u>

(1) निम्नलिखित प्रश्न को इसके बाद विस्तृत परिस्थितियों में इस पूर्ण पीठ को संदर्भित किया गया है: -

> “क्या स्थावर सम्पत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम, 1952 की धारा 8 के प्रावधान, जहां तक ये प्रावधान दिए गए प्रतिकर पर सोलेशियम के माध्यम से 15 प्रतिशत देने से इनकार करते हैं और 6 प्रतिशत की दर से ब्याज देने से भी इनकार करते हैं, उल्लंघनकारी हैं संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रावधान के।”

दिवंगत दीवान हरि कृष्ण खोसला के पास ग्राम मालो माजरा, तहसील और जिला पटियाला, में हिंदू अविभाजित परिवार की संपत्ति में एक तिहाई हिस्सा था। भारत रक्षा अधिनियम, 1962 की धारा 29 की उप-धारा (1) के तहत 17 मार्च, 1967 (अनुलग्नक 'ए') को जिला मजिस्ट्रेट, पटियाला के आदेश द्वारा अपेक्षित भूमि में बड़ा हिस्सा, दीवान हरि कृष्ण खोसला की 167 बीघे 6 बिस्वा जमीन, का शामिल है। उस भूमि में से 157 बीघा और 4 बिस्वा भूमि बाद में केंद्र सरकार द्वारा स्थावर सम्पत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम, (1952 का 30) (इसके बाद इसे अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 7 की उप-धारा (1) के तहत पंजाब सरकार के आधिकारिक राजपत्र, दिनांक 29 अगस्त, 1969 (अनुलग्नक 'बी') में इस आशय की एक सूचना के प्रकाशन द्वारा अधिग्रहित की गई थी। अधिग्रहीत भूमि के लिए हरि कृष्ण खोसला को देय प्रतिकर विशेष भूमि अधिग्रहण कलेक्टर-सह-सक्षम प्राधिकारी, जुलुंदूर (अनुलग्नक 'सी') के आदेश द्वारा 1,62,109.37 पी. निर्धारित किया गया था और उसी के भुगतान का प्रस्ताव हरि कृष्ण खोसला को दिया गया था। उनसे उपरोक्त प्रस्ताव को स्वीकार करने या न करने के बारे में सूचित करने के लिए कहा गया था। 22 जुलाई, 1971 (अनुलग्नक 'डी') के अपने लिखित उत्तर में, हरि कृष्ण खोसला ने अनुरोध किया कि विरोध के तहत भूमि अधिग्रहण कलेक्टर द्वारा दी गई राशि का भुगतान उन्हें किया जाए। साथ ही उन्होंने उन्हें दी गई राशि की अपर्याप्तता पर आपत्ति जताई और मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए सरकार को आवेदन दिया और छह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज का दावा किया। रिट याचिका का अनुबंध 'ई' मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए उनके आवेदन की एक प्रति है, जिसमें 24 अप्रैल, 1971 के अधिनिर्णय के खिलाफ आपत्तियां शामिल हैं। अधिनियम के तहत सक्षम प्राधिकारी ने भूमि अधिग्रहण

कलेक्टर निर्धारित प्रतिकर की राशि का भुगतान करने से भी इनकार कर दिया वो भी इस दलील पर कि दावेदार ने प्रतिकर बढ़ाने के लिए आपत्तियां प्रस्तुत की थीं। सरकार से कोई समाधान नहीं मिलने पर, हरि कृष्ण खोसला ने यह रिट याचिका दायर की।

(2) इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश (पी. सी. जैन, जे.) जिनके समक्ष याचिका सुनवाई के लिए आई थी, ने उपरोक्त उद्धृत प्रश्न तैयार किया और निर्देश दिया कि एक बड़ी पीठ को मामले की सुनवाई करनी चाहिए। इस न्यायालय की एक खंडपीठ (संधवालिया और जैन, जे.जे.) जिसके समक्ष याचिका सुनवाई के लिए सूचीबद्ध थी, ने 16 अगस्त, 1973 को आदेश पारित किया, जिसमें सुनवाई के लिए एक और बड़ी पीठ के गठन के लिए मामले को विद्वान मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखने का निर्देश दिया गया। इसी बीच दीवान हरि कृष्ण खोसला की मृत्यु हो गई। उनके दो बेटों, अवतार कृष्ण खोसला और चंद कृष्ण खोसला ने इस न्यायालय में एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें अनुरोध किया गया कि मामले में याचिकाकर्ताओं के रूप में उनके पिता के नाम के स्थान पर उनका नाम किए जाए, इस आधार पर कि प्रतिकर की राशि में हरि कृष्ण खोसला का हिस्सा मृतक की इच्छा के अनुसार वर्तमान दावेदारों को हस्तांतरित कर दिया गया था। उस आवेदन को हमारे आदेश, दिनांक 6 मई, 1974 द्वारा अनुमति दी गई थी, जिसमें अवतार कृष्ण खोसला और चंद कृष्ण खोसला के नामों को उनके मृत पिता के नाम के स्थान पर रखने का निर्देश दिया गया था।

(3)अधिनियम की धारा 8(3)(ए) की संवैधानिकता पर एक ही आधार पर सवाल उठाया गया है कि यह संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत कानूनों की समान सुरक्षा की गारंटी का उल्लंघन करता है, यहां तक कि याचिकाकर्ता की भूमि का अधिग्रहण जो कि, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (इसके बाद 1894 अधिनियम के रूप में संदर्भित) के तहत हुआ उसपर, उन्हें प्रतिवादियों से उन्हें दिए गए प्रतिकर की राशि (उनके पिता को दी गई) पर कम से कम 15 प्रतिशत अधिक प्राप्त करने का अधिकार होगा सोलेटियम के आधार पर और ब्याज के कारण 6 प्रतिशत अधिक का, लेकिन याचिकाकर्ताओं को उक्त राहत केवल इस आधार पर देने से इनकार कर दिया गया था कि वे अधिनियम के तहत सोलेटियम या ब्याज के हकदार नहीं हैं। इस मुद्दे पर विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों की

सराहना करने के लिए, अधिनियम की कुछ मुख्य विशेषताओं पर ध्यान देना आवश्यक है। सक्षम प्राधिकारी" को अधिनियम की धारा 2(बी) में परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ है नियुक्त किया गया कोई भी व्यक्ति या प्राधिकारी। केंद्र सरकार आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के तहत ऐसे क्षेत्र के लिए सक्षम प्राधिकारी के कार्यों को निष्पादित करने के लिए जो अधिसूचना में निर्दिष्ट किया जा सकता है। धारा 3 की उपधारा (1) सक्षम प्राधिकारी को किसी भी संपत्ति की मांग करने के लिए अधिकृत करती है जिसकी संघ के किसी भी उद्देश्य के लिए आवश्यकता हो सकती है। धारा 7(1) में कहा गया है कि जहां कोई संपत्ति मांग के अधीन है, केंद्र सरकार, यदि उसकी राय है कि सार्वजनिक उद्देश्य के लिए संपत्ति का अधिग्रहण करना आवश्यक है, तो केवल आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित करके इस आशय की सूचना कि केंद्र सरकार ने संपत्ति का अधिग्रहण करने का निर्णय लिया है, उसे प्राप्त कर सकती है। हमें उस प्रश्न का उत्तर देने के उद्देश्य से धारा 7(1) के शेष भाग में दी गई प्रक्रिया के विवरण से कोई सरोकार नहीं है। धारा 7 की उपधारा (2) में प्रावधान है कि जब उपधारा (1) के तहत कोई नोटिस आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित होता है, तो अधिग्रहीत संपत्ति स्वचालित रूप से सभी बाधाओं से मुक्त होकर केंद्र सरकार में निहित हो जाती है, और इसके बाद संपत्ति का स्वामित्व समाप्त हो जाएगा। धारा 7 की उपधारा (3) निम्नलिखित शब्दों में है:-

> " निम्नलिखित परिस्थितियों में अर्जित किए जाने के सिवाय, कोई सम्पत्ति इस धारा के अधीन अर्जित नहीं की जाएगी, अर्थात्:
>
> (क) जहां कि केन्द्रीय सरकार के खर्चे पर पूर्णतः या भागतः अधिग्रहण की कालावधि के दौरान सम्पत्ति पर, उसमें या उसके ऊपर कोई संकर्म किए गए हैं और सरकार यह विनिश्चय करती है कि ऐसे संकर्मों का मूल्य या प्रयोग करने का अधिकार सरकार के प्रयोजनों के लिए प्रतिभूत या परिरक्षित किया जाना चाहिए, या
> (ख) जहां कि उस सम्पत्ति को उस हालत में प्रत्यावर्तित कर देने की लागत, जिसमें वह अधिग्रहण के समय थी, सरकार के अवधारणानुसार अत्यधिक होगी और उसका स्वामी सम्पत्ति को ऐसे

प्रत्यावर्तित करने के लिए प्रतिकर दिए गए बिना उसे अधिग्रहण से निर्मुक्त करने से इन्कार करता है ।"

प्रतिकर के निर्धारण के सिद्धांत और विधि निम्नलिखित शर्तों में अधिनियम की धारा 8 में निर्धारित किए गए हैं: -

"(1) जहां कि इस अधिनियम के अधीन कोई सम्पत्ति अधिगृहीत या अर्जित की जाती है, वहां प्रतिकर दिया जाएगा जिसकी राशि इसमें इसके पश्चात् दी गई रीति और सिद्धांतों के अनुसार अवधारित की जाएगी, अर्थात् :-
(क) जहां कि प्रतिकर की राशि करार द्वारा निश्चित की जा सकती है, वहां उसका संदाय ऐसे करार के अनुसार किया जाएगा ;(ख) जहां कि इस प्रकार का कोई करार नहीं हो पाता है, वहां केन्द्रीय सरकार ऐसे व्यक्ति को, जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है, या रहा है, या उस रूप में नियुक्त होने के लिए अर्हित है, मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करेगी ;
(ग) केन्द्रीय सरकार किसी विशिष्ट मामले में ऐसे व्यक्ति को जिसको अधिगृहीत या अर्जित सम्पत्ति की प्रकृति के बारे में विशेषज्ञीय जानकारी प्राप्त है, मध्यस्थ की सहायता करने के लिए नामनिर्दिष्ट कर सकेगी और जहां कि ऐसा नामनिर्देशन किया जाता है, वहां वह व्यक्ति जिसको प्रतिकर दिया जाना है, उस प्रयोजन के लिए किसी असेसर को नामनिर्देशित कर सकेगा ;
(घ) मध्यस्थ के समक्ष कार्यवाहियों के प्रारंभ पर, केन्द्रीय सरकार और वह व्यक्ति, जिसको प्रतिकर दिया जाना है, यह बताएंगे कि उनकी अपनी-अपनी राय में प्रतिकर की उचित रकम क्या है ;
(ङ) विवाद की सुनवाई के पश्चात् मध्यस्थ प्रतिकर की रकम को, जो उसे न्यायसंगत प्रतीत होती है, अवधारित करते हुए और उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों को विनिर्दिष्ट करते हुए, जिनको ऐसा प्रतिकर दिया जाएगा, अधिनिर्णय देगा, और अधिनिर्णय देने में वह प्रत्येक मामले की परिस्थितियों को और उपधारा (2) और (3) के उपबन्धों का वहां तक जहां तक वे लागू होते हैं, ध्यान रखेगा ;

(च) जहां कि उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों के बारे में विवाद है जो प्रतिकर के हकदार हैं वहां मध्यस्थ ऐसे विवाद का विनिश्चय करेगा और यदि मध्यस्थ को यह मालूम होता है कि एक से अधिक व्यक्ति प्रतिकर के हकदार हैं, तो वह उसकी रकम को ऐसे व्यक्तियों में प्रभाजित कर देगा ;

(छ) माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (1940 का 10) की कोई बात इस अधिनियम के अधीन वाले माध्यस्थमों को लागू नहीं होगी।"

2) [किसी सम्पत्ति के अधिग्रहण के लिए देय प्रतिकर निम्नलिखित से मिलकर होगी :-]

(क) अधिग्रहण की कालावधि की बाबत इतनी आवर्ती राशि की अदायगी, जितनी उस भाटक के बराबर है जो उस सम्पत्ति के उपयोग और दखल के लिए उस दशा में देय होता जिसमें कि वह सम्पत्ति उस कालावधि के लिए पट्टे पर ली गई होती ; और

(ख) ऐसी राशि या राशियां, यदि कोई हों, जो निम्नलिखित सभी बातों या उनमें से किसी में हितबद्ध किसी व्यक्ति की प्रतिपूर्ति करने के लिए आवश्यक पाई जाएं, अर्थात्-

(i) अधिग्रहण के कारण हुई धनीय हानि,

(ii) अधिगृहीत परिसर को खाली करने में हुए व्यय,

(iii) अधिग्रहण से निर्मुक्ति होने पर परिसरों पर पुनः दखल करने में लगे व्यय,

(iv) अधिग्रहण की कालावधि के दौरान सम्पत्ति पर (साधारण घिसाई से अन्यथा) हुए नुकसान जिसके अन्तर्गत वे व्यय आते हैं जिन्हें सम्पत्ति को उस दशा में प्रत्यावर्तित करने में उपगत करना पड़ा है, जिसमें वह अधिग्रहण के समय थी ।

3) धारा 7 के तहत किसी भी संपत्ति के अधिग्रहण के लिए देय प्रतिकर होगा-

(ए) धारा 7 के अधीन सम्पत्ति का अर्जन करने के लिए देय प्रतिकर वह कीमत होगी जिस पर अधिगृहीत सम्पत्ति खुले बाजार में तब

बिकती जब कि वह उसी दशा में रहती जिसमें वह अधिग्रहण के समय थी और अधिग्रहण की तारीख को बेची गई होती।

(बी) यदि मांगी गई संपत्ति को माँग अधिग्रहण की तारीख पर बेचा जाता तो खुले बाजार में इसकी दोगुनी कीमत मिलती, जो भी कम हो।"

(4) धारा 8 (ऊपर पुनः प्रस्तुत) की उप-धारा (3) के खंड (बी) को **भारत संघ बनाम कमला-बाई हरजीवनदास पारेख और अन्य(एआईआर 1968 एस.सी. 377)** में सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान का अनुच्छेद 31(2) का उल्लंघन मानते हुए रद्द कर दिया था। अभिनिर्धारित :-

"धारा 8(3) का खंड (ए) का सिद्धांत बताता है जिसका उद्देश्य भूमि के मालिक को कुछ ऐसा देना है जो अधिग्रहण की तारीख पर इसके बराबर हो। खंड (बी) हालांकि मध्यस्थ को निर्धारित कीमत मापने का निर्देश देता है खंड (ए) के संदर्भ में, यदि अपेक्षित संपत्ति को माँग अधिग्रहण की तारीख पर बेचा गया होता तो उससे दोगुनी धनराशि प्राप्त होती और खंड (ए) के संदर्भ में गणना की गई कीमत से अधिक की अनदेखी करने के लिए खंड (बी) में संदर्भित हैं। यह स्थिति, **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम श्रीमती बेला बनर्जी आदि(ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 170=1954 एस.सी.आर.558)** (सुप्रा) के तथ्यों के साथ घनिष्ठ समानता रखती है, जहां विधायिका ने निर्देश दिया कि भूमि के मूल्य की अधिकता भूमि अधिग्रहण अधिनियम के संदर्भ में 31 दिसंबर, 1946 को निर्धारित मूल्य से अधिक मूल्य को नजरअंदाज किया जाना था। खंड (बी) द्वारा प्रदान किए गए आधार का उस तारीख को भूमि के उचित समकक्ष से कोई लेना-देना नहीं है और न ही अधिग्रहण और न ही ऐसे आधार के लिए कोई सिद्धांत है। इसलिए हम इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकते कि विवादित खंड संविधान के अनुच्छेद 31(2) की आवश्यकताओं को पूरा करता है।"

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री भंडारी ने अब धारा 8(3) के खंड (ए) की संवैधानिकता पर आक्षेप करने की मांग की है। उन्होंने तर्क दिया है कि जैसे ही

धारा 8(3) समाप्त हो जाएगी, याचिकाकर्ताओं को देय प्रतिकर की मात्रा अधिनियम की धारा 8(1)(ई) के तहत निर्धारित की जानी होगी, जो कि धारा 8(3)(ए) में निहित प्रतिबंधों से बाधित हुए बिना मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, निर्धारित होगी । श्री भंडारी द्वारा प्रस्तुत किया गया था कि विवादित प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत आता है क्योंकि यह अपेक्षित भूमि के बीच भेदभाव करता है। परस्पर, क्योंकि अधिनियम या भूमि अधिग्रहण अधिनियम में कुछ भी ऐसा नहीं है जो इस अधिनियम की धारा 7(1) के तहत अपेक्षित भूमि प्राप्त करने के लिए भूमि अधिग्रहण अधिनियम या इस अधिनियम को चुनने के मामले में सरकार का मार्गदर्शन करता हो। हालाँकि इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि इस अधिनियम के तहत अधिग्रहण अपेक्षित भूमि के मालिक के लिए तुलनात्मक रूप से प्रतिकूल है क्योंकि इस अधिनियम के तहत अधिग्रहण के मामले में मालिक प्रतिकर की राशि पर सोलेटियम और ब्याज के भुगतान के अपने वैधानिक अधिकार से वंचित हो जाता है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत वह इन दोनों अधिकारों का हकदार है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम के साथ-साथ इस अधिनियम के तहत अधिग्रहण का सहारा केवल सार्वजनिक उद्देश्य के लिए किया जा सकता है। हालाँकि जिस उद्देश्य के लिए दो अलग-अलग अधिनियमों के तहत दो अलग-अलग मालिकों की भूमि का अधिग्रहण किया जा सकता है, वह एक ही हो सकता है और जिस व्यक्ति की भूमि इस अधिनियम के तहत अधिग्रहित की गई है, वह जिस प्रतिकर का हकदार है, वह उस प्रतिकर से काफी कम होगा जो दूसरा व्यक्ति के अधिकार के रूप में हकदार होगा । इस तर्क के समर्थन में **ओम प्रकाश एवं अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य((1974) 1 एस.सी.सी. 628)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया गया है। यूपी नगर महापालिका अधिनियम, 1959 द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम में किए गए कुछ संशोधनों की संवैधानिकता और यू.पी. नगर सुधार अधिनियम, 1919 (बाद में नगर सुधार अधिनियम के रूप में संदर्भित) के निरसन का प्रभाव का एक विशेष आवास योजना पर निम्नलिखित परिस्थितियों में, उस अपील में प्रश्न उठाया गया था। ओम प्रकाश और अन्य (सर्वोच्च न्यायालय में अपीलकर्ता) की संपत्ति को नगर सुधार अधिनियम की धारा 42 के तहत तैयार आवास योजना के अंतर्गत शामिल क्षेत्र में शामिल किया गया था। कलेक्टर द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 9 के तहत नोटिस जारी किया गया था। इससे पहले कि ओम प्रकाश आदि कलेक्टर के पास अपना

दावा दायर कर पाते, और इससे पहले कि कोई अधिनिर्णय दिया जाता, नगर सुधार अधिनियम को निरस्त कर दिया गया और उसके स्थान पर यू.पी. नगर महापालिका अधिनियम लागू कर दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप नगर महापालिका, इलाहाबाद द्वारा ट्रस्ट का अधिक्रमण कर लिया गया। हालाँकि ओम प्रकाश आदि से कब्जा ले लिया गया था, लेकिन उन्होंने अधिनिर्णय स्वीकार नहीं किया और उनके आवेदन पर जिला न्यायालय का संदर्भ दिया गया। संदर्भ के लंबित रहने के दौरान उन्होंने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में धारा 372 और 376 और अधिनियम की अनुसूची II को चुनौती देते हुए एक रिट याचिका दायर की, जिसके तहत भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 23 को इस आधार पर संशोधित किया गया था और वे संशोधन संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन थे। उक्त प्रावधान की संवैधानिकता के विरुद्ध आक्षेप उच्च न्यायालय में विफल रहा। सर्वोच्च न्यायालय में दायर अपील में, भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 23(2) में जोड़े गए परंतुक की संवैधानिकता (इस आशय पर कि उप-धारा उत्तर प्रदेश नगर महापालिका अधिनियम, 1959 के अध्याय XIV के तहत अर्जित किसी भी भूमि पर लागू नहीं होगी, कुछ निर्दिष्ट आकस्मिकताओं को छोड़कर) पर उसी आधार पर सवाल उठाया गया था जो हमारे सामने प्रचारित किया गया है। यह तर्क दिया गया कि परंतुक निरर्थक था क्योंकि धारा 23 (2) में परंतुक जोड़ने का प्रभाव यह था कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत सरकार द्वारा भूमि अनिवार्य रूप से अधिग्रहित किए जाने पर निर्धारित मूल्य पर 15 प्रतिशत की छूट स्वीकार्य नहीं होगी यदि वही भूमि अधिनियम के अध्याय XIV के तहत योजना उद्देश्य के लिए अधिग्रहित की गई हो। सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ अपील को स्वीकार किया : -

> "इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि सरकार महापालिका या अन्य स्थानीय निकाय सहित किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि का अधिग्रहण असंशोधित भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत या अधिनियम द्वारा संशोधित उस अधिनियम के तहत कर सकती है। यदि वह पहला कोर्स चुनते हैं तो फिर संबंधित भूमि-मालिक बेहतर प्रतिकर के हकदार होंगे, जिसमें 15 प्रतिशत मुआवज़ा, भूमि की संभावित मूल्य आदि शामिल होगा। न

ही ऐसे भूमि मालिकों के रास्ते में अधिनियम की धारा 372(1) द्वारा अधिनियमित कोई बाधा या रुकावट होगी, जो कलेक्टर के फैसले से असंतुष्ट होकर उस अधिनियम की धारा 18 के तहत न्यायालय का दरवाजा खटखटाएंगे। यदि सरकार उसी उद्देश्य के लिए, अधिनियम द्वारा संशोधित भूमि अधिग्रहण अधिनियम का सहारा लेती है, तो भूमि- संबंधित मालिक (मालिकों) को संशोधनों द्वारा परिकल्पित सभी अक्षमताओं या प्रतिबंधों से पीड़ित होना पड़ेगा। इस तरह, विवादित कानून सरकार को समान स्थिति वाले भूमि मालिकों के बीच भूमि अधिग्रहण के मामले में भेदभाव करने में सक्षम बनाता है।

विवादित संशोधन उचित वर्गीकरण के प्रसिद्ध परीक्षणों को पूरा नहीं करते हैं जो कानून के प्रयोजन के लिए स्वीकार्य हैं। यह किसी भी बोधगम्य अंतर पर आधारित नहीं है और न ही इस अंतर का उस उद्देश्य के साथ कोई तर्कसंगत संबंध है जिसे हासिल करना है, अर्थात् सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि का अनिवार्य अधिग्रहण। इस बिंदु पर अधिक विस्तार करना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह मामला समाप्त हो गया है- इस कोर्ट के **नागपुर इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट में और अन्य बनाम विट्ठल राव और अन्य(एआईआर 1973 एस.सी. 689)**के फैसले के अनुपात से हम बंधे हुए हैं। नागपुर इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट के मामले में न्यायालय की ओर से बोलते हुए मुख्य न्यायाधीश सीकरी ने जो कहा, उसे यहां उद्धृत करके चर्चा को समाप्त करना पर्याप्त होगा: -

'क्या विधानमंडल यह कह सकता है कि अस्पताल के लिए भूमि बाजार मूल्य के 50 प्रतिशत पर, स्कूल के लिए बाजार मूल्य के 60 प्रतिशत पर और सरकारी भवन के लिए बाजार मूल्य के 70 प्रतिशत पर अधिग्रहित की जाएगी? तीनों वस्तुएँ सार्वजनिक प्रयोजन हैं और जहाँ तक मालिक का सवाल है, उसे इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि यह एक सार्वजनिक उद्देश्य है या दूसरा। अनुच्छेद 14 एक व्यक्तिगत अधिकार प्रदान करता है और वर्गीकरण को उचित ठहराने

के लिए कुछ ऐसा होना चाहिए जो इस व्यक्तिगत अधिकार के साथ एक अलग व्यवहार को उचित ठहराए।''

(बाकी अंश मेरे द्वारा थोड़ी देर बाद उद्धृत किया जा रहा है जब मैं नागपुर इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के आधिपत्य के आदेश का जिक्र कर रहा हूं)।

हालांकि याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने हमारा ध्यान **पी. वज्रवेलु मुदलियार बनाम भूमि अधिग्रहण के लिए विशेष उप कलेक्टर, पश्चिम मद्रास और अन्य(एआईआर 1965 एस.सी. 1017) और बालम्मल और अन्य बनाम मद्रास राज्य और अन्य(एआईआर 1968 एस.सी. 1425)** में सर्वोच्च न्यायालय के पहले के निर्णयों की ओर आकर्षित किया। लेकिन नागपुर इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट और अन्य बनाम विट्ठल राव और अन्य में उनके आधिपत्य की बाद की आधिकारिक घोषणा के मद्देनजर उन पहले के निर्णयों को किसी भी बड़े विवरण में संदर्भित करना आवश्यक नहीं लगता है और फिर जिसे बाद में ओम प्रकाश और अन्य (सुप्रा) के मामले में अपनाया गया। बालम्मल और अन्य (सुप्रा) के मामले में, मद्रास सिटी इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट अधिनियम (1950 का 37) के तहत गठित बोर्ड ने उस अधिनियम की धारा 71 के तहत कुछ भूमि का अधिग्रहण किया। उस अधिनियम की धारा 73 भूमि अधिग्रहण अधिनियम के प्रावधानों को कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के लिए उस अधिनियम की अनुसूची में निर्दिष्ट संशोधनों के अधीन करती है। संशोधनों का परिणाम यह हुआ कि जिन व्यक्तियों की भूमि 1950 के मद्रास अधिनियम के तहत अनिवार्य रूप से अधिग्रहित की गई थी, वे उस सहायता के अधिकार से वंचित हो गए जिसके वे हकदार होते यदि उनकी भूमि, भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत अधिग्रहित की जाती। सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य ने 1950 के मद्रास अधिनियम की अनुसूची के खंड 6(2) को उस अधिनियम की धारा 73 के साथ पढ़ा, जो भूमि मालिकों को वंचित करता था भूमि के बाजार मूल्य के 15 प्रतिशत की दर पर सोलेटियम का वैधानिक अधिकार, और यह निर्धारित किया गया कि ऐसे मालिक अपनी भूमि के अनिवार्य अधिग्रहण को ध्यान में रखते हुए भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 23 की उप-धारा (2) के तहत प्रश्नगत मुआवजे के हकदार थे, क्योंकि यदि उनकी जमीनें भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत अधिग्रहण होतीं तो भूमि मालिक इस तरह के मुआवजे के हकदार होते और

कानूनों की समान सुरक्षा की गारंटी का उल्लंघन करने वाले भेदभाव का एक स्पष्ट मामला बनाया गया था क्योंकि भूमि-मालिकों को सोलेटियम से वंचित करने का प्रावधान उन भूमि के मालिकों के लिए अधिक प्रतिकूल था जो अनिवार्य रूप से अधिग्रहित की गई थीं। नागपुर इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट और अन्य (सुप्रा) का मामला बिल्कुल समान प्रावधान से संबंधित है। नागपुर सुधार ट्रस्ट अधिनियम में, जिसमें धारा 23 में नया खंड (3)(ए) जोड़ा गया था, और उप-पैराग्राफ के प्रावधानों के संचालन द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 23(2) में एक प्रावधान जोड़ा गया था। उस अधिनियम की अनुसूची के पैराग्राफ 10 के (2) और (3), अनुसूची के पैराग्राफ 10 के उप-पैराग्राफ (2) और (3) को सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य द्वारा संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हुए रद्द कर दिया गया था। यह निर्धारित किया कि उक्त प्रावधान राज्य सरकार को एक मालिक और दूसरे मालिक के बीच समान स्थिति में भेदभाव करने में सक्षम बनाते हैं, और इसलिए, **नंदेश्वर प्रसाद बनाम यूपी सरकार(एआईआर 1964 एस.सी. 1217)** में निर्धारित उचित वर्गीकरण के परीक्षण को पूरा नहीं करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि यह बिल्कुल स्पष्ट था कि सरकार भूमि अधिग्रहण अधिनियम या सुधार ट्रस्ट अधिनियम के तहत आवास योजना के लिए संपत्ति का अधिग्रहण कर सकती है, और ऐसा होने पर, इसने राज्य सरकार को, एक मालिक और दूसरे मालिक जो समान रूप से स्थित है, के बीच भेदभाव करने में सक्षम बनाया। खासकर जब सभी उद्देश्यों, जिनके लिए सुधार ट्रस्ट अधिनियम के तहत या भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत भूमि का अधिग्रहण किया जा सकता है, सार्वजनिक उद्देश्य थे, और इससे मालिक को कोई फर्क नहीं पड़ता कि अधिग्रहण है, किसी एक सार्वजनिक उद्देश्य के लिए हैं या दूसरे के लिए। निर्णय के दौरान उनके आधिपत्य द्वारा निम्नलिखित प्रेक्षित किया गया:-

> "हमें ऐसा लगता है कि आम तौर पर प्रतिकर के निर्धारण के लिए अनुच्छेद 14 के तहत सार्वजनिक उद्देश्य के आधार पर वर्गीकरण की अनुमति नहीं है। स्थिति अलग है जब भूमि का मालिक स्वयं लाभ का प्राप्तकर्ता हो उस सुधार योजना का , और प्रतिकर तय करते समय उससे होने वाले लाभ को ध्यान में रखा जाता है। क्या भूमि अधिग्रहण करने वाले प्राधिकारी के आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है? दूसरे शब्दों में,

यदि भूमि किसी सुधार ट्रस्ट या नगर निगम या सरकार द्वारा अधिग्रहित की जाती है तो क्या प्रतिकर के अलग-अलग सिद्धांत निर्धारित किए जा सकते हैं? हमें ऐसा लगता है कि उत्तर नकारात्मक है क्योंकि जहां तक मालिक का सवाल है तो उसे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि जमीन किसी एक प्राधिकरण द्वारा अधिगृहीत की गई है या दूसरे प्राधिकरण द्वारा।

यह समान रूप से महत्वहीन है कि क्या यह एक अधिग्रहण अधिनियम है या कोई अन्य अधिग्रहण अधिनियम है जिसके तहत भूमि का अधिग्रहण किया जाता है। यदि दो अधिनियमों का अस्तित्व राज्य को एक मालिक को दूसरे मालिक से अलग व्यवहार देने में सक्षम बनाता है, तो समान स्थिति वाला मालिक जिसके साथ भेदभाव किया जाता है, वह अनुच्छेद 14 के संरक्षण का दावा कर सकता है।"

(5) कुछ इसी तरह का प्रश्न **हरबंस कौर और अन्य बनाम लुधियाना इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, लुधियाना और अन्य(आईएलआर 1973 (1) 705 = 1973 पीएलआर 511)** मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष विचार के लिए आया था। पूर्ण पीठ द्वारा यह निर्धारित किया कि जिन व्यक्तियों की भूमि पंजाब नगर सुधार अधिनियम के तहत अधिग्रहीत की गई थी, तो उन्हें भूमि अधिग्रहण अधिनियम के लाभों से वंचित करना संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा, और, इसलिए, भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत सभी लाभ उन व्यक्तियों को दिए जाने चाहिए जिनकी भूमि और संपत्ति पंजाब नगर सुधार अधिनियम के तहत अधिग्रहित की गई है।

(6) **भारत संघ बनाम कांतिलाल निहालचंद(1972 बीएलआर 155)** में, बॉम्बे उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ को अधिनियम की धारा 7 की वैधता पर विचार करने का अवसर मिला। सरकार द्वारा अधिग्रहीत भूमि के लिए समान स्थिति वाले मालिकों को दो अधिनियमों के तहत देय प्रतिकर की मात्रा में अंतर को उस प्रावधान की संवैधानिकता पर आक्षेप का आधार बनाया गया था।वह

मामला मूल रूप से बॉम्बे उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश (तुलजापुरकर, जे.) के समक्ष आया था। विद्वान न्यायाधीश ने कहा:-

> "मेरे विचार में, इसलिए, प्रक्रिया के दो सेट, एक 1952 के अधिनियम के तहत और दूसरा सामान्य अधिनियम यानी 1894 के अधिनियम के तहत, जो केंद्र सरकार के पास उपलब्ध हैं ,1952 के अधिनियम के तहत निर्धारित अधिक पूर्व न्यायिक प्रक्रिया को अपनाने के लिए ऐसी अपेक्षित संपत्तियों में से कुछ को चुनने के उद्देश्य से उनका चयन करना और चूंकि इसे केंद्रीय सरकार के अनिर्देशित विकल्प पर छोड़ दिया गया है, और इसीलिए अधिनियम की धारा 7 को भेदभावपूर्ण और अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना जाना चाहिए। इसलिए, विवादित आदेश रद्द किए जाने योग्य है।"

उपर्युक्त निर्णय के खिलाफ भारत संघ की अपील में, एक तर्क दिया गया था जिसे हमारे समक्ष सरकार के विद्वान अधिवक्ता द्वारा फिर से लागू किया गया है, जो तर्क और उस पर बॉम्बे उच्च न्यायालय का निर्णय था उसके लिए बॉम्बे हाई कोर्ट की डिवीजन बेंच के निर्णय में निम्नलिखित अंश पर ध्यान दें: -

> "अब, यह सच है कि धारा 7, उप-धारा (3) में योजना स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि अधिनियम के तहत अपेक्षित संपत्तियों के अधिग्रहण का आदेश केवल उप-धारा (3) के खंड (ए) और (बी), में उल्लिखित परिस्थितियों में ही किया जा सकता है। हमने पहले ही उक्त खंडों को पुन: प्रस्तुत कर दिया है और उसके प्रभाव को निम्नानुसार बताया जा सकता है:
>
> यद्यपि उप-धारा (1) सार्वजनिक उद्देश्य के लिए अधिनियम के तहत अधिग्रहीत संपत्ति के अधिग्रहण का प्रावधान करती है और सक्षम बनाती है, आम तौर पर इस अधिकार का प्रयोग केवल दो प्रकार की अधिग्रहीत संपत्तियों के मामलों में करने के लिए निर्देशित किया जाता है, अर्थात, (1) जहां कार्यों का निर्माण किया गया है और अधिग्रहण करना आवश्यक है, और (2) जहां संपत्ति को उसकी मूल

स्थिति में बहाल करने की लागत अत्यधिक है। सवाल यह है कि क्या धारा 7 में निहित उपरोक्त योजना को सार्वजनिक प्रयोजन के लिए किसी भी प्रकार की संपत्तियों को हासिल करने के लिए 1894 अधिनियम के तहत सरकार को उपलब्ध अधिकारों को पूरी तरह से खत्म करने और निरस्त करने के लिए एक विशेष क़ानून कहा जा सकता है। प्रश्न स्वयं निम्नलिखित में हल हो जाता है: 'क्या यह मानने की अनुमति है कि ये दो प्रकार की अधिग्रहीत संपत्तियां, जिन्हें अब 1952 के अधिनियम के तहत हासिल किया जा सकता है, 1894 के अधिनियम के तहत सार्वजनिक उद्देश्य के लिए बिल्कुल भी हासिल नहीं की जा सकती हैं?' यह फिर से केवल इस आधार पर है कि निहितार्थ यह है कि 1894 के अधिनियम के तहत सार्वजनिक प्रयोजन के लिए संपत्ति प्राप्त करने की योजना इन दो प्रकार की अधिग्रहीत संपत्तियों के संबंध में 1952 के अधिनियम द्वारा पूरी तरह से निरस्त कर दी गई है। प्रथम दृष्टया, यह प्रस्ताव हमें अरक्षणीय नहीं लगा है। विधानमंडल 1894 के अधिनियम को निरस्त करने पर विचार नहीं कर रहा था जब वह एक सक्षम प्रावधान बना रहा था, वर्तमान अधिनियम की धारा 7(1) के तहत इन दो प्रकार की अपेक्षित संपत्तियों के अधिग्रहण के लिए, जो कि धारा 7 की उप-धारा (3) के खंड (ए) और (बी) में निहित कारणों के अलावा कई अन्य कारणों से अधिग्रहीत हो सकती हैं, क्योंकि पहले से ही मांगी गई संपत्तियों की आवश्यकता हो सकती है सार्वजनिक उद्देश्य के लिए। 1952 के अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों की भाषा में ऐसा कुछ भी नहीं है जो इस अधिनियम के तहत या 1894 अधिनियम के तहत अपेक्षित संपत्तियों के अधिग्रहण को अवैध बनाता हो और स्पष्ट या परोक्ष रूप से प्रतिबंधित करता हो। दोनों अधिनियमों के प्रावधान एक-दूसरे के अनुरूप हैं और इन्हें एक ही समय में तदनुसार लागू किया जा सकता है। दो अधिनियमों में प्रावधानों का सह-अस्तित्व और 1894 अधिनियम में प्रावधानों को वर्तमान अधिनियम के तहत अपेक्षित भूमि पर लागू करना, धारा की उप-धारा (3) में प्रावधानों का विनाशकारी नहीं है, जैसा कि भारत संघ की ओर से प्रस्तुत किया गया है। धारा 7 की भाषा

सकारात्मक शब्दों में है और तदनुसार यह इंगित नहीं करती है कि विधानमंडल का 1894 अधिनियम के तहत उन्हीं भूमियों और संपत्तियों के अधिग्रहण की योजना को निरस्त करने का इरादा था। **एन.आई. कैटरर्स लिमिटेड आदि बनाम पंजाब राज्य आदि(एआईआर 1967 एस.सी. 1581)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित प्रासंगिक परीक्षणों को लागू करते हुए, हमें धारा 7 के प्रावधानों की वैधता समर्थन में श्री नरीमन द्वारा दिए गए तर्कों को स्वीकार करना असंभव लगता है। "

भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता श्री कुलदीप सिंह ने हमें यह मानने के लिए मनाने की कोशिश की कि कांतिलाल निहालचंद के मामले (सुप्रा) का बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा सही निर्णय नहीं लिया गया है, और हमें इससे अलग दृष्टिकोण रखना चाहिए जो उस न्यायालय के तीन विद्वान न्यायाधीशों द्वारा लिया गया (एक द्वारा प्रारंभिक चरण में, और अन्य दो द्वारा अपीलीय चरण में)। उन्होंने फिर से अधिनियम की धारा 7 की उप-धारा (3) में निहित प्रावधानों पर जोर दिया (पहले से ही इस निर्णय के पहले भाग में उद्धृत), और तर्क दिया गया कि अधिनियम के तहत संपत्ति अर्जित करने की शक्ति को धारा 7(3) में निर्धारित सीमा के भीतर सीधे सीमित कर दिया गया है, इसका परिणाम यह होगा कि अधिनियम के तहत केवल वही संपत्ति अर्जित की जा सकती है जो सरकार द्वारा पहले ही मांगी जा चुकी है। इस आधार पर यह तर्क दिया गया कि एक तरफ अधिनियम के तहत मांगी गई संपत्तियों के मालिकों और दूसरी तरफ उन मालिकों जिनकी संपत्तियों को इसके तहत नहीं मांगा गया है, के बीच एक उचित वर्गीकरण है ; और, इसलिए, अधिनियम में विवादित प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं करता है। हम तीन कारणों से श्री कुलदीप सिंह के इस तर्क में कोई दम नहीं ढूंढ पा रहे हैं। सबसे पहले, उन तीन चीजों की सूची जो भूमि के मालिक को (उसकी अर्जित भूमि के लिए) प्रतिकर के भुगतान के मामले में चिंता नहीं करती हैं, जिसका उल्लेख, सर्वोच्च न्यायालय के आधिपत्य द्वारा किया गया है, विट्ठल राव के मामले में (प्रासंगिक भाग पहले से ही उद्धृत), उस में संपत्ति के चौथे मामले को सुरक्षित रूप से जोड़ा जा सकता है जिसका पहले ही अधिग्रहण किया जा चुका है या नहीं मांगा गया है। माँगी गई संपत्ति और अन्य संपत्ति के बीच अंतर, दोनों को अलग-अलग वर्गीकृत करने के उद्देश्य से, कोई तर्कसंगत नहीं है

संपत्ति प्राप्त करने के उद्देश्य के साथ संबंध में (जो सभी मामलों में सार्वजनिक उद्देश्य के लिए है), और, इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित समानता खंड को संतुष्ट करने के लिए दूसरी शर्त को भी किसी भी स्थिति में आक्षेपित प्रावधान से संतुष्ट नहीं करती हैं। यह तथ्य कि अधिग्रहीत संपत्ति के स्वामी को मुआवज़ा प्राप्त हो रहा हैं (जो बाज़ार किराए के बराबर है), इससे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि गैर-अपेक्षित संपत्ति के मालिक को अपनी संपत्ति अर्जित करने से पहले एक निजी किरायेदार से किराए की ऊंची दर भी मिल सकती है।दूसरे, अधिनियम के विपरीत भूमि मालिकों को उनकी संपत्ति के अधिग्रहण के मामले में सोलेटियम और ब्याज से वंचित करने का प्रावधान वे मालिक जिनकी संपत्ति भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत अर्जित की गई है (जिन्हें दावा करने और सांत्वना और ब्याज प्राप्त करने का अधिकार है) को अधिनियम की धारा 7(3) की सकारात्मक शर्तों के आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सकता है। अधिनियम में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह सुझाव दे कि जो संपत्ति है, अधिनियम के तहत मांगी गई उसको 1894 के अधिनियम के तहत हासिल नहीं किया जा सकता। श्री कुलदीप सिंह द्वारा धारा 7(3) की इस प्रकार व्याख्या करने का तर्क स्पष्ट रूप से भ्रामक है। प्रावधान केवल यह बताता है कि जिस संपत्ति की मांग नहीं की गई है, उसे अधिनियम के तहत अर्जित नहीं किया जा सकता है। इसका मतलब यह नहीं हो सकता कि इसका उलटा भी सच होना चाहिए, यानी, जो संपत्ति अधिनियम के तहत मांगी गई है, उसे भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत हासिल नहीं किया जा सकता है। 1952 के अधिनियम में निहित किसी भी प्रावधान की भाषा में ऐसा कुछ भी नहीं है जो इस अधिनियम के तहत अधिग्रहीत किसी भी संपत्ति के 1894 के अधिनियम के तहत अधिग्रहण को प्रतिबंधित या अवैध बनाता हो। परिणाम यह है कि अधिनियम के तहत एक मालिक की अधिग्रहीत भूमि को अधिनियम की धारा 7(1) का सहारा लेकर और भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत बिल्कुल समान रूप से स्थित दूसरे मालिक की अधिग्रहीत भूमि का अधिग्रहण करना सरकार के मनमाने और अनिर्देशित विवेक पर छोड़ देता है।तीसरा, श्री कुलदीप सिंह द्वारा उद्धृत मामले [भारत संघ बनाम कमलाबाई हरजीवनदास पारेख और अन्य, और **बल्लभदास मथुरादास लेखनी और अन्य बनाम नगरपालिका समिति, मलकापुर (एआईआर 1970 एस.सी. 1002),** इस वर्तमान मामले से स्पष्ट रूप से अलग हैं। बॉम्बे टाउन प्लानिंग एक्ट (1955 का 27) की धारा 53 और 67 को सर्वोच्च न्यायालय ने **गुजरात राज्य बनाम शांति-लाल मंगलदास और**

अन्य(एआईआर 1969 एस.सी. 634) मामले में अधिकारेतर माना था, इस आधार पर कि दो अलग-अलग प्रावधान थे, एक राज्य सरकार द्वारा अधिग्रहण के लिए, और दूसरा जिसमें स्थानीय प्राधिकरण द्वारा नगर नियोजन के प्रयोजन के लिए अधिग्रहण के रूप में संचालित भूमि का वैधानिक निहितार्थ था, और स्थानीय प्राधिकारी के पास कोई विकल्प नहीं की वह वैकल्पिक तरीकों में से एक या दूसरे का सहारा ले सके, जिसके परिणामस्वरूप अधिग्रहण हुआ हो । जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, वर्तमान मामले में ऐसा नहीं है।

(7) कमलाबाई हरजीवनदास पारेख (सुप्रा) के मामले में, अधिनियम की धारा 8 की उप-धारा (3) के खंड (ए) द्वारा निर्धारित प्रतिकर के निर्धारण के लिए कोई अपवाद नहीं लिया गया था। केवल खंड (बी) में निर्धारित तरीक़े को मनमाना माना गया। मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद हमारा दृढ़ मत है कि संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन स्पष्ट रूप से बड़ा है इस अधिनियम की धारा 8(3)(ए) पर क्योंकि यह सरकार को अधिग्रहीत भूमि के समान स्थिति वाले मालिकों को प्रतिकर के भुगतान के मामले में भेदभाव करने में सक्षम बनाती है। हमारा यह भी मानना है कि एक को कम और दूसरे को अधिक भुगतान करने के प्रयोजनों के लिए मांगी गई और गैर-मांगी गई भूमि के बीच वर्गीकरण भी किसी भी बोधगम्य अंतर पर नहीं पाया गया है। न ही मालिकों के दो वर्गों में अंतर का अधिग्रहण के किसी सार्वजनिक प्रयोजन के लिए संपत्ति का उद्देश्य के साथ कोई तर्कसंगत संबंध है। यह अनावृत्त आंखों के लिए स्पष्ट है कि दो अधिनियमों (1952 अधिनियम और 1894 अधिनियम) के तुलनात्मक प्रावधान राज्य को एक मालिक को दूसरे समान स्थिति वाले मालिक से अलग व्यवहार देने में सक्षम बनाते हैं और जिसके साथ इसमें भेदभाव किया जाता है, वह सम्मान कानूनों की समान सुरक्षा की गारंटी को सफलतापूर्वक लागू करने का हकदार है।

(8) जहां तक छह प्रतिशत प्रति वर्ष ब्याज के उनके दावे का सवाल है, याचिकाकर्ताओं के पक्ष में एक अतिरिक्त तर्क है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत अधिग्रहण के मामले में, ब्याज के भुगतान का प्रावधान उस अधिनियम की धारा 34 द्वारा किया गया है जो इस प्रकार है: -

"जब इस तरह के प्रतिकर की राशि का भुगतान नहीं किया जाता है या जमीन पर कब्जा लेने से पहले जमा नहीं किया जाता है, तो कलेक्टर कब्जा लेने के समय से छह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ दी गई राशि का भुगतान करेगा, जब तक इसका भुगतान या जमा न कर दिया गया हो।"

1952 के अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। हालाँकि, ब्याज अधिनियम (1839 का XXXII) की धारा 1 प्रदान करती है:-

" इसलिए, यह अधिनियमित किया गया है कि, एक निश्चित समय पर या अन्यथा देय सभी ऋणों या रकमों पर, वह न्यायालय जिसके समक्ष ऐसे ऋणों या रकमों की वसूली की जा सकती है, यदि वह उचित समझे, तो लेनदार को उस समय से ब्याज की वर्तमान दर से अधिक नहीं की दर पर ब्याज की अनुमति देगा जब ऐसे ऋण या निश्चित राशियाँ देय थीं, यदि ऐसे ऋण या रकम किसी लिखित दस्तावेज के आधार पर एक निश्चित समय पर देय हों; या यदि अन्यथा देय है, तो उस समय से जब भुगतान की मांग की गई होगी लिखित रूप में, ताकि ऐसी मांग देनदार को नोटिस दे कि ऐसी मांग की तारीख से भुगतान की अवधि तक ब्याज का दावा किया जाएगा: बशर्ते कि ब्याज उन सभी मामलों में देय होगा जिनमें यह अब देय है कानून द्वारा।"

ब्याज अधिनियम के उपरोक्त उद्धृत प्रावधान की भाषा अधिक स्पष्ट है। यह प्रत्येक न्यायालय को एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को देय सभी राशियों पर ब्याज की अनुमति देने का विवेक प्रदान करता है। अधिनियम के तहत सरकार द्वारा भूमि-मालिक को देय प्रतिकर की राशि भूमि अधिग्रहण कलेक्टर के अधिनिर्णय द्वारा सुनिश्चित होते ही निश्चित हो जाती है। इसलिए, उस न्यायालय के पास 1952 के अधिनियम में किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में भी ब्याज अधिनियम की धारा 1 के तहत ब्याज देने का अधिकार क्षेत्र है। धारा 1 का प्रावधान भी महत्वपूर्ण है और ब्याज अधिनियम की धारा 1 के परंतुक से पता चलता है कि उस धारा के दायरे से उत्पन्न ब्याज का भुगतान करने का दायित्व उस संबंध में एक अंतर को भरने के

लिए है जो अधिनियम की धारा 8 में छोड़ दिया गया है जो कि दायित्व बनाता है, राज्य मालिक को प्रतिकर की राशि का भुगतान करने का। **बंगाल नागपुर रेलवे कंपनी लिमिटेड बनाम रतनजी रामजी और अन्य(एआईआर 1938 पी.सी. 67)** में, यह निर्धारित किया कि ब्याज अधिनियम की धारा 1 का प्रावधान उस मामले पर लागू होता है जिसमें इक्विटी कोर्ट ब्याज की अनुमति देने के लिए क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, हालांकि कोई अन्य क़ानून में इसके भुगतान का कोई प्रावधान नहीं है। उक्त न्यायसंगत नियम को ब्याज अधिनियम का हिस्सा बनाकर, ब्याज के भुगतान के संबंध में इक्विटी कोर्ट की शक्ति को देश के सभी न्यायालयों में निहित कर दी गई है। **सतिंदर सिंह बनाम उमराव सिंह और अन्य(एआईआर 1961 एस.सी. 908)** में सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य की आधिकारिक घोषणा कानून के इस स्थापित प्रस्ताव में कोई संदेह नहीं छोड़ती है। उस मामले में पूर्वी पंजाब अचल संपत्ति (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम (1948 का 48) के तहत पंजाब सरकार द्वारा मांगी गई भूमि के प्रतिकर की राशि पर ब्याज का दावा किया गया था। उनके आधिपत्य ने निर्धारित किया कि जहां भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत भूमि का अधिग्रहण किया जाता है, और दावेदारों को प्रतिकर दिया जाता है, दावेदार राज्य द्वारा भूमि का कब्ज़ा लेने और प्रतिकर के भुगतान के बीच की अवधि के लिए प्रतिकर की राशि पर ब्याज के हकदार है, कि ब्याज प्राप्त करने का अधिकार, कब्ज़ा बरकरार रखने का अधिकार का स्थान लेता है और उक्त नियम के आवेदन को 1948 के पंजाब अधिनियम 48 द्वारा बाहर करने का इरादा नहीं है, और यह मात्र तथ्य है कि पंजाब अधिनियम की धारा 5(3), 1894 के भूमि अधिग्रहण अधिनियम की केवल धारा 23(1) को लागू करने से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि अधिनियम ब्याज के भुगतान के मामले में इस सामान्य नियम के आवेदन को बाहर करने का इरादा रखता है। इसे निम्न प्रकार से प्रेक्षित किया :-

> "जब ब्याज के भुगतान का दावा उस व्यक्ति द्वारा किया जाता है जिसकी अचल संपत्ति अनिवार्य रूप से अर्जित की गई है, तो वह उचित रूप से या तकनीकी रूप से तथाकथित नुकसान के लिए दावा नहीं कर रहा है; वह अपने दावे को सामान्य नियम पर आधारित कर रहा है कि यदि वह वंचित है उसकी भूमि से तो उसे तुरंत प्रतिकर देकर कब्ज़ा कर लिया जाना चाहिए; यदि नहीं, तो

> अनिवार्य अधिग्रहण द्वारा लिए गए कब्ज़े के बदले में उसे प्रतिकर की उक्त राशि पर ब्याज का भुगतान किया जाना चाहिए। यह तथ्य कि धारा 5(1), माँग अधिग्रहण और अधिग्रहण दोनों के लिए प्रतिकर से संबंधित है, और सामान्य नियम के अनुप्रयोग को बाहर करने का काम नहीं कर सकता।"
>
> ब्याज अधिनियम, 1839 की धारा 2, न्यायालय को उसमें निर्दिष्ट मामलों में ब्याज की अनुमति देने की शक्ति प्रदान करती है, लेकिन उक्त धारा का प्रावधान यह स्पष्ट करता है कि ब्याज उन सभी मामलों में देय होगा जिनमें यह अब कानून द्वारा देय है। अधिनियम की धारा 1 के ऑपरेटिव प्रावधानों का मतलब यह नहीं है कि जहां ब्याज अन्यथा कानून द्वारा देय था, ऐसे ब्याज को देने की अदालत की शक्ति छीन ली गई है। न्यायसंगत आधार पर या कानून के किसी अन्य प्रावधान के तहत ब्याज देने की शक्ति स्पष्ट रूप से धारा 1 के प्रावधान द्वारा बचाई गई है।"

जहां तक प्रतिकर की राशि पर ब्याज के लिए याचिकाकर्ताओं के दावे का सवाल है (भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 34 के प्रावधानों के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं होने के बावजूद), सतिंदर सिंह के मामले (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय चारों तरफ है।जिस दर पर ब्याज की अनुमति दी जानी है वह वर्तमान बैंक दर है। पार्टियों का यह सामान्य मामला है कि यदि न्यायालय मानता है कि सरकार ब्याज देने के लिए उत्तरदायी है, तो यह केवल छह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से देय होगा। यह भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 34 के संदर्भ में भी उचित है। इस अतिरिक्त आधार पर याचिकाकर्ताओं का ब्याज का दावा धारणीय है।

(9) यहां ऊपर कही गई बातों को ध्यान में रखते हुए, हम हमारे समक्ष आए प्रश्न का उत्तर देते हैं (जिसे शुरुआती भाग में पुन: प्रस्तुत किया गया है इस निर्णय के) सकारात्मक तोर से। धारा 8 की उप-धारा (3) के खंड (बी) को कमलाबाई हरजीवनदास पारेख के मामले (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही रद्द कर दिया गया है, और खंड (ए) जहां तक यह भूस्वामी को इनकार

करता है अधिग्रहीत संपत्ति, जिसकी भूमि अधिनियम की धारा 7 (1) के तहत अर्जित की गई है, प्रतिकर की राशि पर 15 प्रतिशत सलेटियम और छह प्रतिशत की दर से ब्याज, हमारे द्वारा अनुच्छेद 14 का उल्लंघन पाया गया है और धारा 8 का संपूर्ण खंड (3) नष्ट हो गया है। इसका परिणाम यह है कि अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (1) के खंड (सी) के तहत नियुक्त मध्यस्थ उस उपधारा के खंड (ई) के तहत प्रतिकर की ऐसी राशि निर्धारित करेगा जो उसे उचित प्रतीत हो। उचित प्रतिकर के निर्धारण के लिए प्रावधान करने वाली अधिनियम की धारा 8 (1) (ई) संविधान के अनुच्छेद 14 से प्रभावित नहीं होगी क्योंकि ऐसे प्रतिकर के निर्धारण के सिद्धांत भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 23 में आसानी से उपलब्ध हैं, और वही राशि का निर्धारण करने के लिए मध्यस्थ द्वारा अपनाया जाना चाहिए।

(10) हालाँकि पहले प्रस्तुत किए गए केवल कानूनी प्रश्न को ही इस पूर्ण पीठ के समक्ष रखा गया था और पक्षों के अधिवक्ता ने संकेत दिया कि रिट याचिका में कोई अन्य मुद्दा नहीं उठता है और केवल सिर्फ़ प्रश्न का उत्तर देने के बजाय, हमें याचिका का निपटान करना चाहिए। इस मामले से अलग होने से पहले एक और मामला जिसका जिक्र जरूरी है, वह यह है कि (बहस की) शुरुआत में हमने याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता, श्री कुलदीप सिंह भंडारी से पूछा कि क्या वह संपत्ति के अधिग्रहण पर आक्षेप करना चाहते हैं, लेकिन उन्होंने स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया उन्होंने न तो अपनी याचिका में इसकी मांग की थी और न ही ऐसी कोई राहत चाहते थे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि उनके मुवक्किल द्वारा मांगी गई एकमात्र प्रभावी राहत यह है कि उन्हें सलेटियम राशि और ब्याज के भुगतान का हकदार माना जाना चाहिए। अन्यथा भी, हमारे द्वारा संदर्भित प्रश्न का दायरा श्री भंडारी के विवाद से आगे नहीं जाता है। इसलिए, हमने अपना निर्णय केवल धारा 8(3) के दायरे तक ही सीमित रखा है। खंड (ए) और (बी) को हटा दिए जाने के बाद, धारा 8 की उपधारा (3) में कुछ भी नहीं बचा है।

(11) पूर्वगामी कारणों से हम इस याचिका को स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि स्थावर सम्पत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम (1952 का 30) की धारा 8 (3) (ए) संविधान के अनुच्छेद 14 के अधिकारातीत है, और यह कि याचिकाकर्ता केंद्र सरकार से सरकार द्वारा अधिग्रहीत की गई उनकी भूमि के लिए

उन्हें दिए गए प्रतिकर की राशि पर 15 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से दावा करने और प्राप्त करने के हकदार हैं, साथ ही राशि पर छह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज भी प्राप्त करने के हकदार हैं। मामले की परिस्थितियों में पार्टियों को अपनी लागत वहन करने के लिए छोड़ दिया गया है।

माननीय न्यायाधीश श्री एम. आर. शर्मा - मैं अपने मुख्य न्यायाधीश से पूरी तरह सहमत हूँ और इसमें जोड़ने के लिए कुछ भी नहीं है।

माननीय न्यायाधीश श्री आर.एन.मित्तल - मैं सहमत हूँ।

<u>अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।</u>

ऋतु तंवर

प्रिशक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

हरियाणा न्यायिक सर्विसेज़